६९७ बंबई, आषाढ़ वदी ८, रवि, १९५२

भुजा द्वारा जो स्वयंभूरमणसमुद्रको तर गये, तरते हैं, और तरेंगे, उन सत्पुरुषोंको निष्काम भक्तिसे त्रिकाल नमस्कार

श्री अंबालालका लिखा हुआ तथा श्री त्रिभोवनका लिखा हुआ तथा श्री देवकरणजी आदिके लिखे हुए पत्र प्राप्त हुए हैं।

प्रारब्धरूप दुस्तर प्रतिबंध रहता है, उसमें कुछ लिखना या कहना कृत्रिम जैसा लगता है और इसलिये अभी पत्रादिकी मात्र पहुँच भी नहीं लिखी गयी। बहुतसे पत्रोंके लिये वैसा हुआ है, जिससे चित्तको विशेष व्याकुलता होगी, उस विचाररूप दयाके प्रतिबंधसे यह पत्र लिखा है। आत्माको मूलज्ञानसे चलायमान कर डालें ऐसे प्रारब्धका वेदन करते हुए ऐसा प्रतिबंध उस प्रारब्धके उपकारका हेतु होता है, और किसी विकट अवसरमें एक बार आत्माको मूलज्ञानके वमन करा देने तककी स्थितिको प्राप्त करा देता है, ऐसा जानकर, उससे डरकर आचरण करना योग्य है, ऐसा विचारकर पत्रादिकी पहुँच नहीं लिखी, सो क्षमा करें ऐसी नम्रतासहित प्रार्थना है।

अहो! ज्ञानीपुरुषकी आशय-गंभीरता, धीरता और उपशम! अहो! अहो! वारंवार अहो!

ॐ

द्वितीय जेठ सुदी १, शनिको आपको लिखा पत्र ध्यानमें आये तो यहाँ भेज × × ×[1] जैसे चलता आया है, वैसे चलता आये, और मुझे किसी प्रतिबंधसे प्रवृत्ति करनेका कारण नहीं है, ऐसा भावार्थ आपने लिखा, उस विषयमें जाननेके लिये संक्षेपमें नीचे लिखता हूँ–

जैनदर्शनकी पद्धतिसे देखते हुए सम्यग्दर्शन और वेदांतकी पद्धतिसे देखते हुए केवलज्ञान हमें संभव है। जैनमें केवलज्ञानका जो स्वरूप लिखा है, मात्र उसीको समझना मुश्किल हो जाता है। फिर

१. यहाँ अक्षर खंडित हो गये हैं।

वर्तमानमें उस ज्ञानका उसीने निषेध किया है, जिससे तत्संबंधी प्रयत्न करना भी सफल दिखायी नहीं देता।

जैनप्रसंगमें हमारा अधिक निवास हुआ है, तो किसी भी प्रकारसे उस मार्गका उद्धार हम जैसों द्वारा विशेषतः हो सकता है, क्योंकि उसका स्वरूप विशेषतः समझमें आया हो, इत्यादि। वर्तमानमें जैनदर्शन इतना अधिक अव्यवस्थित अथवा विपरीत स्थितिमें देखनेमें आता है, कि उसमेंसे मानों जिनेंद्रको × × × × × ×[1] गया है, और लोग मार्ग प्ररूपित करते हैं। बाह्य झंझट बहुत बढ़ा दी है, और अंतर्मार्गका ज्ञान प्रायः विच्छेद जैसा हुआ है। वेदोक्त मार्गमें दो सौ चार सौ बरसमें कोई कोई महान आचार्य हुए दिखायी देते हैं कि जिससे लाखों मनुष्योंको वेदोक्त पद्धति सचेत होकर प्राप्त हुई हो। फिर साधारणतः कोई कोई आचार्य अथवा उस मार्गके जाननेवाले सत्पुरुष इसी तरह हुआ करते हैं, और जैनमार्गमें बहुत वर्षोंसे वैसा हुआ मालूम नहीं होता। जैनमार्गमें प्रजा भी बहुत थोड़ी रह गयी है और उसमें सैंकड़ों भेद हैं। इतना ही नहीं, किन्तु 'मूलमार्ग' के सन्मुख होनेकी बात भी उनके कानमें नहीं पड़ती, और उपदेशकके ध्यानमें नहीं है, ऐसी स्थिति है। इसलिये चित्तमें ऐसा आया करता है कि यदि उस मार्गका अधिक प्रचार हो तो वैसे करना, नहीं तो उसमें रहनेवाली प्रजाको मूललक्ष्यरूपसे प्रेरित करना। यह काम बहुत विकट है। तथा जैनमार्गको स्वयमेव समझना और समझाना कठिन है। उसे समझाते हुए अनेक प्रतिबंधक कारण आ खड़े हों, ऐसी स्थिति है। इसलिये वैसी प्रवृत्ति करते हुए डर लगता है। उसके साथ-साथ ऐसा भी रहता है कि यदि यह कार्य इस कालमें हमारेसे कुछ भी बने तो बन सकता है, नहीं तो अभी तो मूलमार्गके सन्मुख होनेके लिये दूसरेका प्रयत्न काम आये वैसा दिखायी नहीं देता। प्रायः मूलमार्ग दूसरेके ध्यानमें नहीं है, तथा उसका हेतु दृष्टांतपूर्वक उपदेश करनेमें परमश्रुत आदि गुण अपेक्षित हैं, एवं बहुतसे अंतरंग गुण अपेक्षित हैं, वे यहाँ हैं, ऐसा दृढ़ भास होता है।

इस तरह यदि मूलमार्गको प्रकाशमें लाना हो तो प्रकाशमें लानेवालेको सर्वसंगपरित्याग करना योग्य है; क्योंकि उससे यथार्थ समर्थ उपकार होनेका प्रसंग आता है। वर्तमान दशाको देखते हुए, सत्तागत कर्मोंपर दृष्टि डालते हुए कुछ समयके बाद उसका उदयमें आना संभव है। हमें सहजस्वरूपज्ञान है, जिससे योगसाधनकी इतनी अपेक्षा न होनेसे उसमें प्रवृत्ति नहीं की, तथा वह सर्वसंगपरित्यागमें अथवा विशुद्ध देशपरित्यागमें साधने योग्य है। इससे लोगोंका बहुत उपकार होता है, यद्यपि वास्तविक उपकारका कारण तो आत्मज्ञानके सिवाय दूसरा कोई नहीं है।

अभी दो वर्ष तक तो वह योगसाधन विशेषतः उदयमें आये वैसा दिखायी नहीं देता, इसलिये इसके बादकी कल्पना की जाती है, और तीनसे चार वर्ष उस मार्गमें व्यतीत किये जायें तो ३६वें वर्षमें सर्वसंगपरित्यागी उपदेशकका समय आये, और लोगोंका श्रेय होना हो तो हो।

छोटी उमरमें मार्गका उद्धार करनेकी अभिलाषा रहा करती थी, उसके बाद ज्ञानदशा आनेपर क्रमशः वह उपशांत जैसी हो गयी; परंतु कोई कोई लोग परिचयमें आये थे, उन्हें कुछ विशेषता भासित होनेसे किंचित् मूलमार्गपर लक्ष्य आया था, और इस तरफ तो सैकड़ों या हजारों मनुष्य समागममें आये थे जिनमेंसे लगभग सौ मनुष्य कुछ समझदार और उपदेशकके प्रति आस्थावाले निकलेंगे। इस परसे ऐसा देखनेमें आया कि लोग तरनेके इच्छुक विशेष हैं; परंतु उन्हें वैसा योग मिलता नहीं है। यदि सचमुच उपदेशक पुरुषका योग बने तो बहुतसे जीव मूलमार्ग प्राप्त कर सकते हैं, और दया आदिका विशेष उद्योत हो सकता है। ऐसा दिखायी देनेसे कुछ चित्तमें आता है कि यह

१. यहाँ अक्षर खंडित हो गये है।

कार्य कोई करे तो बहुत अच्छा; परंतु नजर दौड़ानेसे वैसा पुरुष ध्यानमें नहीं आता, इसलिये लिखनेवालेकी ओर ही कुछ नजर जाती है; परंतु लिखनेवालेका जन्मसे लक्ष्य ऐसा है कि इसके जैसा एक भी जोखिमवाला पद नहीं है, और जब तक अपनी उस कार्यकी यथायोग्यता न हो तब तक उसकी इच्छा मात्र भी नहीं करनी चाहिये, और बहुत करके अभी तक वैसा ही वर्तन किया गया है। मार्गका यत्किंचित् स्वरूप किसी-किसीको समझाया है, तथापि किसीको एक भी व्रतपच्चक्खान दिया नहीं है, अथवा तुम मेरे शिष्य हो और हम गुरु है, ऐसा प्रकार प्रायः प्रदर्शित हुआ नहीं है। कहनेका हेतु यह है कि सर्वसंगपरित्याग होनेपर उस कार्यकी प्रवृत्ति सहजस्वभावसे उदयमें आये तो करना, ऐसी मात्र कल्पना है। उसका वास्तवमें आग्रह नहीं है, मात्र अनुकंपा आदि तथा ज्ञानप्रभाव है, इससे कभी-कभी वह वृत्ति उद्भवित होती है, अथवा अल्पांशमें वह वृत्ति अंतरमें है, तथापि वह स्ववश है। हमारी धारणाके अनुसार सर्वसंगपरित्यागादि हो तो हजारों मनुष्य मूलमार्गको प्राप्त करें, और हजारों मनुष्य उस सन्मार्गका आराधन करके सद्गतिको प्राप्त करें, ऐसा हमारे द्वारा होना संभव है। हमारे संगमें अनेक जीव त्यागवृत्तिवाले हो जाये ऐसा हमारे अंतरमें त्याग है। धर्म स्थापित करनेका मान बड़ा है; उसकी स्पृहासे भी कदाचित् ऐसी वृत्ति रहे, परंतु आत्माको बहुत बार कसकर देखनेसे उसकी संभावना वर्तमान दशामें कम ही दीखती है; और किंचित् सत्तामें रही होगी तो वह क्षीण हो जायेगी, ऐसा अवश्य भासित होता है, क्योंकि यथायोग्यताके बिना, देह छूट जाये वैसी दृढ़ कल्पना हो तो भी, मार्गका उपदेश नहीं करना, ऐसा आत्मनिश्चय नित्य रहता है। एक इस बलवान कारणसे परिग्रह आदिका त्याग करनेका विचार रहा करता है। मेरे मनमें ऐसा रहता है कि वेदोक्त धर्म प्रकाशित या स्थापित करना हो तो मेरी दशा यथायोग्य है। परंतु जिनोक्त धर्म स्थापित करना हो तो अभी तक उतनी योग्यता नहीं है, फिर भी विशेष योग्यता है ऐसा लगता है।